राख

एक उजाड़-सी सुबह को जब कि ऊपर वाले वार्ड का मरीज़ लगातार दो महीनों की बीमारी के बाद पलंग से ज़मीन पर उतारा गया और एक लम्बी चीख के साथ उसकी लाश अस्पताल की पीली बिल्डिंग की पथरीली सीढ़ियों से उतार दी गयी तो सुरेन्द्र के पिता को बड़े अनुनय-विनय के पश्चात् ऊपर वाले वार्ड की वह जगह मिल गयी। जनरल-वार्ड के मरीज़ों की चिल्ल-पों और हो-हल्ला से सुरेन्द्र को उन्नीस दिनों के बाद मुक्ति मिली और ऊपर का एक अलग अच्छा कमरा मिल गया। पिता जी को आराम से लिटाकर उसने दवा पिलायी और सामने की छत पर आया। उस कमरे से लगे कमरे में जनपद के हेड-क्लर्क दत्त बाबू पिछले दो-तीन महीनों से पड़े थे। सुरेन्द्र ने उधर देखा, दरवाज़ा खुला था और दत्त बाबू आराम-कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। दत्त बाबू ने उसे देख लिया तो सुरेन्द्र को न चाहते हुए भी उनसे मिलना पड़ा।

लगभग आध घण्टे तक दत्त बाबू के रोग, उसकी प्रबलता, दवा-दारू आदि पर निरर्थक बातें सुनकर जब सुरेन्द्र लौटा तो उसके पिता

के कमरे से लगे हुए दूसरे कमरे के दरवाज़े के पास एक पीली-पीली-सी औरत सिगड़ी में कोयले सुलगा रही थी। सुरेन्द्र ने एक उड़ती नज़र उस पर डाली। एक २३-२४ बरस की युवती, मामूली-सी हल्की-साड़ी, तितर-बितर हो रहे बाल....वह फिर घूमकर नीचे देखने लगा। हरी-हरी खूबसूरत दूबों वाली मखमली-कालीन कितनी दिलकश थी! उसके बीच का फ़ौव्वारा, इर्द-गिर्द नीले-पीले फूल....सूरजमुखी सुनहली धूप में जिस्म खोले धूप की रेशमी किरणों में नहा रही थी।....दूसरी ओर ड्रेसर गन्दे घाव धोकर सफ़ेद पट्टियाँ बाँध रहा था।

पास ही आपरेशन-रूम था। वहाँ की तेज़-तेज़ रोशनी में सैकड़ों औज़ार चमक रहे थे। वहाँ से चीखने की आवाज़ आ रही थी। उस आवाज़ में क्या था? नहीं, कुछ नहीं। वह आवाज़ पुरानी थी। वह एक मरीज़ की आवाज़ थी, और अधिक कुछ नहीं। वह बीस बरस का एक जवान लड़का था, एक ज़रा-सी चोट लापरवाही के कारण बढ़ गयी थी और आज उसकी एक टाँग काट डाली गयी थी। भरी जवानी में उसकी एक टाँग आज काट दी गयी थी। वह लँगड़ा होकर भी क्यों जीना चाहता था? उसकी जवान और सुन्दर बीवी, जो केवल ६ महीने पहले ही शादी करके लायी गयी थी, आज बहुत रो रही थी, क्योंकि उसका सुन्दर पति आज लँगड़ा हो गया था और वह अब एक अपाहिज की पत्नी कहलायेगी।

उधर औरतों का वार्ड था। क़तार में लगे लोहे के स्प्रिंगदार पलंग, गद्दे, जिनमें लोग मरते और जीते थे। उनके पलंगों के सीनों में कितने ही दर्दों का इतिहास गुँथा था।

यह अस्पताल था, मरीज़ों की ज़िन्दगी और मौत का स्थान! यहाँ राह का भिखारी भी, जिसे गज़-भर ज़मीन बैठने को नहीं मिलती, बीमार होकर स्प्रिंगदार लोहे के पलंग पर सोता था और सिविल सर्जन

उसके सिर पर हाथ फेरता था, यहाँ जनपद का हेड-क्लर्क दो-तीन महीने से बीमार हो पड़ा था। यहाँ एक बीस बरस के युवक की भरी जवानी में टाँग काटी गयी थी और उसकी जवान बीवी रोती थी। यहाँ सुरेन्द्र के पिता को १६ दिनों तक जनरल वार्ड में डाल रखने के पश्चात् एक व्यक्ति की मृत्यु पर ऊपर के वार्ड में जगह मिली थी और परिवार में अकेला सुरेन्द्र, पिता की सेवा के लिए बिना तनख़्वाह की छुट्टी पर रहता था। यहाँ एक २४ बरस की युवती सादी साड़ी पहने तितर-बितर हो रहे बालों में राख की परत लिये, सिगड़ी सुलगाती थी, उसका पति कैन्सर का रोगी था....

"मिस्टर सुरेन्द्र !"

सुरेन्द्र चौंककर पलटा। नर्स ने आगे बढ़कर कुर्सी खींची और सिविल सर्जन की ओर सरकायी। सिविल सर्जन ने बैठते हुए सुरेन्द्र की ओर देखा। सुरेन्द्र ने हड़बड़ाकर सहमे हुए स्वर में कहा, "जी नमस्ते !"

सर्जन की आँखें सुरेन्द्र के पिता की ओर झुकीं।

*

तीसरी रात, शाम से ही हवा के साथ घिरे आये काले मेघ बरस पड़े। भयानक गरज और बिजली की तेज़ चमक के साथ ही बड़ी-बड़ी बूँदें, लॉन पानी में डूब गया था। ठण्डी हवा और तेज़ हो गयी तो सुरेन्द्र ने खिड़कियों की चिकें गिरा दीं। ऐसी सर्दी में सुरेन्द्र के पिता के जोड़ों का दर्द जाग उठता है। पिता जी को कम्बल ओढ़ाकर उसने उनके कानों में मफ़लर लपेट दिया और स्वयं शाल ओढ़, एक उपन्यास लेकर आराम-कुर्सी पर लेट गया।

बाहर बारिश हो रही थी।

खिड़कियों से पानी की बूँदें टकरा रही थीं और झक्कड़ तेज़ चल रहा था। ऐसे मौसम में जाने सुरेन्द्र का कौन-सा ज़ख्म टीस उठा, जो जोड़ों के दर्द से कहीं ज़्यादा तकलीफ़देह था। ऐसे मौसम में उसका जी होता कि शाल में मुँदे-ढँके पड़ा रहे और बारिश की लय में डूबा कोई दर्दीला संगीत सुनता रहे। वह निढाल होकर आँखें बन्द कर खो जाय। बारिश में भीगी रात की साँसें कितनी दर्दीली होती हैं। बरसात की बूँदों के ज़मीन को चूमने की आहिस्ता-आहिस्ता आवाज़ें इतनी संजीदा क्यों हो उठती है!

जनरल वार्ड में आज एक नया मरीज़ आया था। उसका एक कन्धा टूट गया था। वह आदिवासी था, जंगलों में रहता था, आध गज़ कपड़े का टुकड़ा लपेटता था। उसकी बीवी ने क्रोध में आकर उसकी गर्दन पर कुल्हाड़ी चला दी थी। वह बच तो गया था, लेकिन चोट गहरी लगी थी। देहाती अस्पताल से नहीं सम्हला तो यहीं भेज दिया गया। वह शायद आज रात भर चिल्लायेगा और सुबह मर जायगा।

बारिश नहीं थमी। रात भर शायद न थमे। सुरेन्द्र का कच्ची दीवारों वाला मकान चू रहा होगा। उसके फ़र्श की सील गहरी हो रही होगी, पर उसे देखने वाला कोई नहीं। पानी चूने की जगहों पर पतीलियाँ और बर्तन कोई नहीं रख पायगा।

सुरेन्द्र हँसा।

बाजू वाले कमरे में दत्त बाबू सो गये थे। आज शायद उन्हें कुछ आराम था। दूसरी तरफ़ के कमरे में रोशनी थी। पीली-पीली-सी औरत। शायद वह जाग रही थी। शायद उसका पति पीड़ा से कराह रहा था और शायद....

दरवाज़ा आहिस्ते से खुला और ठण्डी हवा पूरे ज़ोर-शोर से कमरे

में घुस आयी। सुरेन्द्र का रोआँ-रोआँ हिल उठा। शायद आज बर्फ़ गिरेगी। उसने आँखें खोलीं। पिता जी सो गये थे। वह उठकर दरवाज़े के निकट आया। कैन्सर के रोगी की पत्नी दरवाज़े से लगी खड़ी थी। सुरेन्द्र का जी एकबारगी धड़क उठा। उसने घबराये और आश्चर्य के स्वर में कहा, "आप !"

उसने सुरेन्द्र के आश्चर्य की ओर ध्यान दिये बिना ही नीचे सिर किये भरे स्वर में अनुनय उड़ेलकर कहा, "थोड़ी तकलीफ़ करके असिस्टेण्ट सर्जन को बुला देते। उनकी तबीयत एकाएक बहुत खराब हो गयी है।"

आज भी उसके बाल बेतरतीब थे। उसका चेहरा पीला था। उसकी आँखें वीरान थीं, पर बालों में रात्रि की परत नहीं थी। सुरेन्द्र ने बिना और कोई प्रश्न किये केवल एक बार उसके उड़ रहे बालों और सूखे, पीले उदास चेहरे को देखा, फिर आश्वासन देकर, उसी तेज़ बारिश में बग़ैर छाते के ही निकल पड़ा।

दूसरे दिन सुरेन्द्र को ज़ुकाम के साथ थोड़ी हरारत हो आयी। न चाहकर भी वह दिन-भर आराम-कुर्सी पर लेटा रहा। पिता जी के लाख पूछने पर भी कि वह इतना सुस्त क्यों है, उसने कुछ नहीं बताया। उठना न चाहते हुए भी वह पिता जी के सारे काम करता रहा। दवा पिलायी, बिस्तर बदला और जोड़ों पर मालिश करता रहा।

लेकिन दूसरी सुबह जब सुरेन्द्र ने फट रहे सिर और बुखार से मुँद रही आँखें लिये काँपते हाथों से पिता जी को दवा पिलायी तो कल तक की अपरिचित औरत नीली ने आकर गिलास अपने हाथ में ले लिया और सुरेन्द्र से हल्के स्वर में कहा, "आप आराम कीजिए !"

सुरेन्द्र केवल फटी आँखों से देखता रहा। यह कौन है ? उन बाप-बेटे के जीवन में सहसा इतना अधिकार लिये कैसे आ गयी ? यह तो

सुरेन्द्र की कल्पना है। उसकी कल्पना तो इन्द्रधनुषी है। उसके रंग छलनामय हैं। पर जो कुछ सुरेन्द्र आज देख रहा था, वह छलावा नहीं, सत्य था, क्योंकि नीली सादी-सी साड़ी का एक छोर कमर में खोंसे, बेतरतीब बाल लिये सुरेन्द्र के पिता को दवा पिला रही थी....

और एकाएक उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और सिर चकरा उठा। उसे नहीं मालूम किसने उसे अपने बाहुओं में सम्हाला, लेकिन जैसे बड़ी दूर से, स्नेह और अधिकार भरा किसी नारी का स्वर गूँजा, "आप उठ नहीं सकेंगे।"

सुरेन्द्र की आँखें भर आयीं। उसकी २१ साल की ज़िन्दगी में उसके लिए किसी नारी का स्वर नहीं उठा। यह पहला नारी-स्वर था, जिसमें स्नेह, अधिकार और आदेश था। उसने माँ की सूरत नहीं देखी, बहन उसके थी ही नहीं, और पत्नी?

वह ६० रुपया पाने वाला क्लर्क था। उसे पत्नी रखने का कोई अधिकार नहीं था।

रात को उसने आँखें खोलीं तो देखा, नीली पिता जी के खिसक गये कम्बल को ठीक से ओढ़ा रही थी। सुरेन्द्र ने आँखें मूँद लीं। नीली ने खिड़कियों की चिकें गिरायीं और दरवाज़े बन्द कर दिये। उस दिन काले बादलों से आसमान छिप रहा था और हवा की साँसें लम्बी हो गयी थीं। जाते-जाते उसने कुर्सी के नीचे लटक रहे शाल के छोर को ठीक किया और अपनी हथेली सुरेन्द्र की पेशानी पर रख दी।

उस स्पर्श से सुरेन्द्र के मन-प्राण सिहर उठे। उसके जी में आया कि वह नीली की हथेलियों में अपना चेहरा छिपा ले और खूब रोये.... खूब! लेकिन बुखार का स्पन्दन लेकर नीली जा चुकी थी और सामने के दरवाज़े की साँकल हिल रही थी। शाल एक ओर फेंक वह बाहर आया। पूरा बरामदा सूना था। दत्त बाबू के कमरे का दरवाज़ा बन्द

था। वह नीली के पति के कमरे के पास आया। दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। खिड़की के शीशे से उसने देखा कि नीली का पति एक हड्डी का ढाँचा था। उसका चेहरा सूख गया था और आँखें डरावनी हो गयी थीं। दाढ़ी के कुछ बाल पकने लगे थे। उसमें बोलने की शक्ति नहीं।....

नीली अपने पति के पास गयी तो उसने बड़े धीमे स्वर में कहा, "नीली, मेरे पास आओ!" और उसने अपनी टहनी की तरह सूखी बाहें फैला दीं। नीली उन्हीं बाहों में जाकर गुँथ गयी। अपनी भर्रा गयी आवाज़ से नीली के सिर पर हाथ फेरते उसने कहा, "तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली जाती हो, नीली!"

नीली ने अपने को और झुकाकर आकुल स्वर में कहा, "देखिए, मैं आपके निकट ही तो हूँ।"

नीली का पति अपनी धुँधली आँखों में अविश्वास लिये नीली की ओर कुछ पल ताकता रहा। फिर बोला, "तुम भी मुझसे डरने लगी हो क्या, नीली? देखो तो तुम्हारा हरीश कैसा हो गया है! मेरी आँखें धुँधली होकर धँस गयी हैं। मेरे हाथ-पाँव दरख़्त की सूखी लकड़ियाँ हो गये हैं। जिस्म खोखला हो गया है। मैं उठ-बैठ नहीं सकता। मेरे ओंठ सूख गये हैं। तुम्हारा प्यार कम हो गया क्या!"

नीली का कलेजा जैसे टूक-टूक होकर बिखर गया। हरीश के कमज़ोर सीने में सिर रखकर वह ज़ोर से रो पड़ी, "नहीं, नहीं, नहीं!" फिर भावुकता के आवेश में उसने हरीश का चेहरा अपनी हथेलियों के बीच रख लिया, कुछ पल देखती रही। फिर रोने लगी, "इन आँखों में मेरा सुनहला संसार दफ़न है! ये ओंठ आज भी हरीश के ओंठ हैं, मेरे हरीश के!" और पगली नीली ने हरीश के सूखे पपड़ी जमे काले ओंठों को कई बार चूम लिया।

सुरेन्द्र स्वयं भी रो उठा। खिड़की से हटकर वह कमरे में आया। उसके जिस्म के पोर-पोर में आज इतना दर्द कहाँ से समा गया? उसके हाथ-पाँव इतने ढीले क्यों हो गये हैं? उसका मुँह बार-बार आज क्यों सूखता है? उसने अपने को निढाल-सा आराम-कुर्सी पर गिरा दिया। नीली साधारण नारी नहीं। नीली सादी साड़ी का एक छोर कमर में खोंसकर सिगड़ी सुलगाने वाली पीली औरत नहीं।....

रात सुरेन्द्र ने बुरे-बुरे सपने देखे—नीली पहले दिन वाली ही साड़ी पहने, वैसे ही एक छोर कमर में खोंसे, बेतरतीब बालों में राख की परत लिये, सिगड़ी में पड़े कोयलों को फूँकती है। कोयलों के सुर्ख जिस्म को राख ने अपने जबड़ों में दबोच लिया है। नीली के फूँकने से कोयले का जिस्म नहीं खुलता, केवल राख उड़ती है, नीली के बालों से लिपटती है और कोयले ढेर हो जाते हैं—उजली, भूरी, चित-कबरी राख का ढेर! लेकिन फिर भी उस राख के ढेर के निकट अपने खाली हाथ लिये नीली बैठी है। सुरेन्द्र कहता है, 'अंगारे राख हो गये, नीली, सुर्ख अंगारों के बाद राख के ढेर से जतलाया जाने वाला प्रेम झूठा है, केवल दिखावा मात्र।' नीली भर्राये स्वर में कहती है, 'तुम नहीं समझोगे, सुरेन्द्र, अभी भी राख में अंगारे छिपे हैं। राख अभी भी गर्म है। मैं अपना हाथ नहीं खींच सकती।'

'और जब ठण्डी हो जायगी तो?'

'जब ठण्डी हो जायगी तो उसे हाथों में समेटकर अपने सीने पर मल लूँगी। पर तुम कौन हो, तुम यह सब क्यों पूछते हो?'

सुरेन्द्र चौंककर उठ बैठा। बाहर बड़ी तेज़ बारिश हो रही थी। आधी रात के आँचल में सिमटकर रात रो रही थी। चारों ओर फैला एक अजीब-सा सन्नाटा! अस्पताल के मरीज़ों की थकन-भरी साँस नींद में तेज़ हो रही थी और बारिश के स्वर में मिल रही थी। जनरल वार्ड

से केवल एक आवाज़ आ रही थी, उसी युवक की रह-रहकर फैल उठने वाली चीख, जिसकी टाँग काट डाली गयी थी और जिसका घाव अब पक गया था।

*

उस दिन आसमान साफ़ था। केवल हल्के रेशमी बादलों के कुछ टुकड़े तैर रहे थे। हवा भी बड़ी हल्की थी। सुरेन्द्र उस दिन घूमने निकला। अस्पताल के हर कोने, हर कमरे और हर वार्ड से होकर गुज़रा। हर मरीज़ को ग़ौर से देखा। अस्पताल की छत की मुँडेर से झुका वह देर तक खड़ा रहा। आज नीले आसमान में बादलों के अलावा कुछ रंग-बिरंगी पतंगें भी उड़ रही थीं। बड़ी दूर बादलों के बीच उड़ती एक पतंग पर उसकी आँखें रुक गयीं। सुरेन्द्र को भी बचपन में पतंग उड़ाने का शौक़ था। बचपन की वे छोटी-मोटी घटनाएँ याद आयीं। पर जाने दो! आज तो सुरेन्द्र युवक है। वह पीछे की गोल चक्कर वाली सीढ़ियों से उतरकर दूर निकल गया। वह आज अकेले भटकना चाहता था। अस्पताल की हवा में मरीजों की साँस बसी है। वहाँ हर चप्पे से दवा की बास आती है। उसने मैदान की खुली हवा में सीना फैला-फैलाकर लम्बी-लम्बी साँसें लीं।

आज अस्पताल में एक साथ ही दो मरीज़ आये। एक किसी की बहू और किसी की बीवी, १८-१९ बरस की लड़की, जो प्रसव के बाद ही मर गयी। दूसरा एक बदनसीब युवक था। उसके पेट का आपरेशन हुआ था, लेकिन उसके टाँके टूट गये। हवा अन्दर चली गयी और वह मर गया। अन्त, जाने दो। यह कोई ज़रूरी तो नहीं कि अस्पताल में आया हर व्यक्ति ज़िन्दगी लेकर ही लौटे। पर सुरेन्द्र यह सब क्यों सोचता है? उसने अपने दिमाग़ को एक हल्का-सा झटका दिया।

दूर मैदान में बच्चे खेल रहे थे। शाम का साया फैला चला आ रहा था। क्षितिज की गोद में एक तारिका उठकर धीमे-धीमे अपना दीवट जलाने लगी। क्षितिज की गोद से आने वाली हवा कितनी ठण्डी थी! सुरेन्द्र को किसी कविता की एक पंक्ति स्मरण हो आयी :

'रात पगली रो रही है तारिकाओं का सुनहला स्नेह खोकर !'

जब वह लौटा तो अँधेरा गहरा हो गया था। अस्पताल की वह पीली बिल्डिंग सैकड़ों मरीज़ों को अपने उदर में लिये, शाम के अँधियारे में तेज़-तेज़ रोशनियों में हँस रही थी। आज अस्पताल में इतना सन्नाटा क्यों है? स्वयं सुरेन्द्र का मन इतना सूना और उदास-सा क्यों है? वह ऊपर आया। दत्त बाबू की बीमारी कुछ बढ़ गयी थी, इसलिए दरवाज़े लगे थे। अपने कमरे की ओर बढ़ता सुरेन्द्र रुक गया। छत पर एक अँधेरे कोने में नीली खड़ी थी। उसकी आँखें अँधेरे में क्या ढूँढ़ रही थीं?

निकट आकर सुरेन्द्र ने हल्के स्वर में कहा, "अँधेरे में कैसे खड़ी हैं आप?"

नीली चौंकी। उसने लौटकर देखा और अपनी आँखें पोंछ डालीं। सुरेन्द्र ने चौंककर पूछा, "आप रो रही हैं?"

नीली ने सहमकर अपना आँचल सम्हाला, सिर झुकाया और आवाज़ साफ़ कर, सम्हलकर बोली, "नहीं तो!"

पर दूसरे ही पल नीली फूट पड़ी, "नहीं, मैं आपसे क्या छिपाऊँ कि मैं रो नहीं रही हूँ! मैं रो रही हूँ। देखा न आपने, मैं कितनी कमज़ोर हूँ। वे चिड़चिड़े हो गये हैं। पर आप नहीं जानते, सुरेन्द्र जी, वे मेरे बग़ैर मर भी नहीं सकते। सकीना की रूह भले उनके पलंग के गिर्द भटकती रहे और वे भले ही सकीना की याद करें, लेकिन वे मेरी गोद में ही मरेंगे!"

सुरेन्द्र कुछ नहीं बोल सका। उसे सान्त्वना देने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिल पा रहे थे। निकट जाकर उसने नीली के सिर पर सहानुभूतिपूर्ण हाथ रख दिये, जिन्हें आदरपूर्वक सरकाकर नीली अपने हाथों में ले, उन पर अपना चेहरा रख फफक-फफककर रो उठी। और सुरेन्द्र अपना गीला हाथ लिये लौट आया। उसकी हथेलियों में आज नीली के आँसू सुलग रहे थे।

सकीना एक मुस्लिम परिवार की औरत थी, जो अपने पति को तलाक दे चुकी थी। उन दिनों जब हरीश नया-नया ही ओवरसियर होकर आया था, सकीना एकाएक हरीश के जीवन में आ गयी। जंगल और देहात में नीली अकेली रहा करती, हरीश तो सकीना में रम चुका था। हमेशा दौरे पर, शिकार पर, जंगल में वह उसके साथ होती। एक दिन शिकार में सकीना को ज़ख़्मी चीते ने घायल कर दिया और दो महीने के बाद वह मर गयी।

आज सकीना की रूह हरीश के इर्द-गिर्द घूमती है और नीली कहती है कि वह उसे ले जायगी। उसके हरीश को ले जाने के लिए ही सकीना की रूह भटकती है। अपने कमरे में आकर सुरेन्द्र चुपचाप लेट गया। यहाँ अस्पताल में उसका जी घुटता। यह पीली इमारत और बिजली के तेज़ बल्ब उसे नोचते-से हैं। यहाँ हर दिन नये मरीज़ आते हैं। रोज़ नयी-नयी बीमारियाँ होती हैं। प्रतिदिन ही किसी-न-किसी के जिस्म की चीर-फाड़ होती है। रोज़ कोई रोता है और एक-दो दिनों में कोई-न-कोई मर जाता है। यहाँ नीली रोती है। हरीश रोता है और सकीना की रूह भटकती है।

सुरेन्द्र ने पिता जी के पलंग के पास जाकर सहसा कहा, "पिता जी, अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। बिलकुल नहीं रहेंगे।"

*

घर आकर उसे लगा, जैसे वह अस्पताल से अच्छा होकर आया मरीज़ है। अस्पताल के उस वातावरण में सुरेन्द्र को लगता था, जैसे वह स्वयं भी कई महीनों का बीमार है। दूसरे दिन ही वह आफ़िस गया। पिता जी की दवाई वह अस्पताल से चपरासी भेजकर मँगा लेता। उसे अस्पताल से डर लगने लगा था। सुरेन्द्र अपनी कच्ची दीवारों के बीच शीत-भरी ज़मीन में मरना ज़्यादा पसन्द करेगा। जीवन के बहुत प्रारम्भ में उससे जब किसी ने पूछा था कि वह क्या बनना पसन्द करेगा तो उसने कहा था कि वह डाक्टर बनेगा। आज सुरेन्द्र को हँसी आती है, वह आज केवल एक आफ़िस का क्लर्क होकर रह गया। डाक्टर बनने के पहले पैसा चाहिए। पर सुरेन्द्र का हृदय भी तो डाक्टर बनने योग्य नहीं। वह भावुक है, पागल !

लगभग पन्द्रह दिनों के बाद एक दिन चपरासी के न आने पर सुरेन्द्र को स्वयं ही दवाई लेने अस्पताल जाना पड़ा। एक बार फिर उस ज़हरीले वातावरण में सुरेन्द्र को साँस लेनी पड़ी। वार्ड, मरीज़, आपरेशन, चीख-शोर, ज़िन्दगी और मौत !

दवाई लेकर, न चाहते हुए भी, वह सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गया। आते वक्त वह नीली से मिल भी न पाया था। उस रात उसके गीले आँसू अपनी हथेली में लेकर ही वह चला आया था। सहसा अपने चले आने के विषय में वह नीली से क्या कहेगा ? शायद नीली उससे पूछे भी न। वह कौन होता है ? दो दिनों की बीमारी का साथ क्या कभी स्थायी होता है ?

सुरेन्द्र हँसा और धड़कते दिल और तेज़ क़दमों से वह नीली के कमरे की ओर देखे बग़ैर ही दत्त बाबू के कमरे की ओर बढ़ा। उसके

क़दम लड़खड़ाने-से लगे। उसे आभास हुआ, जैसे किसी की आँखें उसका पीछा कर रही हैं और जैसे कोई उसे रोकने ही वाला हो। सपाटे से दत्त बाबू को पुकारे बिना वह दरवाज़ा खोलकर अन्दर घुस गया।

अन्दर आकर उसने साँस ली, पर अभी तक उसका दिल धड़क रहा था। थोड़ी देर तक उसकी समझ में न आया कि दत्त बाबू उससे क्या पूछ रहे हैं और वह क्या जवाब दे रहा है, लेकिन जब सुरेन्द्र सम्हला तो उसने पाया कि दत्त बाबू कह रहे थे, "ऐसे भागे कि आज सूरत दिखायी है! जाते वक्त मिलकर भी न गये। नीली को भी नहीं बताकर गये।"

सुरेन्द्र का जी एकबारगी धड़क उठा।

दत्त बाबू ने कहा, "जाते समय वह तुम्हारी किताबें दे गयी थी। उसका अब कौन रह गया!"

सुरेन्द्र सहसा तड़पकर चौंका। उसकी धड़कनें और बढ़ गयीं। सूखी-सी आवाज़ में उसने पूछा, "क्यों, क्या हुआ?"

"हरीश मर गया, तुझे नहीं मालूम क्या?"

और सुरेन्द्र कुछ पल जैसे जमा-सा रह गया। उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। फिर सहसा सम्हलकर पता नहीं क्यों उसने झूठ कह दिया, "आँ....हाँ। कितने दिन हो गये, दत्त बाबू?"

"एक हफ़्ते से ज़्यादा हो गया, सुरेन्द्र! पिछले इतवार की रात को....बेचारी नीली! उसका भी कैसा भाग्य है! सुनता हूँ, उसके माँ-बाप कोई भी नहीं।....तुझे जाते-जाते भी कई बार याद किया था।" दत्त बाबू ने कहा।

सुरेन्द्र ने हाँपते-से स्वर में कहा, "पर दत्त बाबू, आपने यह तो नहीं बताया कि आप कैसे हैं?" बात बदलकर उसने सामने

देखा। सामने की उसी छत के अँधेरे में नीली ने उसकी हथेली में अपना चेहरा छिपाया था, उसके सामने रोयी थी और सुरेन्द्र केवल मूक खड़ा था।

दत्त बाबू शायद और कुछ कह रहे थे, लेकिन वह बिना कुछ कहे-सुने उठ खड़ा हुआ। नीली वाले कमरे का दरवाज़ा आज बन्द था। दरवाज़े के पास एक दिन नीली सादी साड़ी का एक छोर कमर में खोंसे सिगड़ी सुलगा रही थी....और एक दिन उसने कहा था, 'तुम नहीं समझोगे, सुरेन्द्र, अभी राख में अंगारे छिपे हैं, राख अभी भी गर्म है। मैं अपना हाथ खींच नहीं सकती।'

'और जब ठण्डी हो जायगी?'

'ठण्डी हो जायगी तो उसे हाथों में समेटकर सीने पर मल लूँगी। पर तुम कौन हो? तुम यह सब क्यों पूछते हो?'

*

सुरेन्द्र ने अपनी डबडबा आयी आँखें उस ओर से हटाकर सामने फैलायीं, सिर झुकाया, अपने आड़े-तिरछे हो रहे डगों को सीधा कर सीढ़ियों पर जमाया और रेलिंग का सहारा लेकर उतर गया।

* * *